ISSN No. 2231-0045 VOL.II* ISSUE-I*AUGUST-2013
Periodic Research

प्रसाद कृत 'चन्द्रगुप्त' : संदर्भ–राष्ट्रीय चेतना

सारांश

प्रसाद का समय राष्ट्रीयता और जागरण का युग था। यही कारण है कि प्रसाद साहित्य में कला, समाज, संस्कृति राजनीति धर्म आदि के प्रति नई जागरुक दृष्टि देखने को मिलती है, जिनमें सामंती रूढ़ियों के तिरस्कार और राष्ट्रीयता के साथ आधुनिकता का स्वर सन्निविष्ट था।

राष्ट्रीय चेतना एक व्यापक अवधारणा है जिसमें राष्ट्र प्रेम के सभी सम्बद्ध तत्व समाहित हो जाते है और प्रसाद की बहुचर्चित नाट्यकृति 'चन्द्रगुप्त' में इसी राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति है। 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में ही चन्द्रगुप्त कहता है कि आत्म सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है। यही आत्मसम्मान अलका में है जो सिंहरण को देश के लिए सुरक्षित रखती है। उसमें नयी शक्ति भरती है। भारतीय अस्मिता की श्रेष्ठता के लिए प्रसाद ने कार्नेलिया से कई बार भारत भूमि का गुणगान कराया है। उसकी गीत–योजना में भी प्रसाद ने इस तत्व को नहीं भुलाया है। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त, अलका, कार्नेलिया, चाणक्य आदि पात्रों के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को दिखाया है।

किसी देश, राष्ट्र के विकास में राष्ट्रीय–चेतना का होना अति आवश्यक है और वर्तमान भारत वर्ष में इसका अभाव खलता है। ऐसी स्थिति में '' 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप'' शीर्षक शोध–पत्र का महत्व असंदिग्ध है।

बिजय रवानी
शिवडंगाल कोलयरी, इन्दरा कालोनी
पो०– निंघा, बर्द्धवान
पिन – 713370
पं० बंगाल

मुख्य शब्द : राष्ट्रीय दृष्टिकोण, राष्ट्रवाद, संकीर्ण मानसिकता

प्रस्तावना

राष्ट्रीय चेतना एक व्यापक अवधारणा है जिसमें राष्ट्र प्रेम के सभी सम्बन्धी तत्व समाहित हो जाते है। प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक में इसी राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति है। प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में गहन राष्ट्रीय भावना अभिव्यक्त हुई है, किन्तु 'चन्द्रगुप्त' की राष्ट्रीय चेतना अन्यतम है। कुछ विद्वानों के अनुसार, "'चन्द्रगुप्त' प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ नाटक है, और कुछ के अनुसार, इसका स्थान 'स्कंदगुप्त' के बाद है।''[1]

'चन्द्रगुप्त' के कथानक में राष्ट्रीय भावना की प्रवृत्ति मिलती है, जिसमें पराधीन देश की आजादी और संघर्ष करने की इच्छा शक्ति है। इसी इच्छा शक्ति के बल पर चन्द्रगुप्त जैसा नायक नन्द जैसे कठोर शासक से प्रजा को मुक्ति दिलाता है, जिसका प्रेरक चाणक्य है। डॉ० दशरथ ओझा प्रसाद के कथानक के सन्दर्भ में कहते है कि– '' 'चन्द्रगुप्त' में उनकी ऐतिहासिक शोधशक्ति जितनी प्रस्फुटित हुई है, उतनी ही उनकी काव्य– प्रतिभा भी प्रखर हो उठी है।''[2] प्रसाद के नाटक अपने युग की उपज है। उनमें तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि– ''यद्यपि प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक है, पर उनमें आधुनिक आदर्शों और भावनाओं का आभास इधर–उधर विखरा मिलता है, स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त दोनों में स्वदेश प्रेम, विश्वप्रेम और अध्यत्मिकता का आधुनिक रूप–रंग बराबर झलकता लगता है।''[3]

राष्ट्रीय भावना की पहली शर्त आत्मसमान है। 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में ही चन्द्रगुप्त कहता है कि– ''आत्म सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।''[4]

आत्मसम्मान पराधीनता में रहते हुए नहीं प्राप्त हो सकती है इसी आत्मसम्मान के लिए सब कुछ न्यौछावर होता है और यही स्वाधीनता की पहली कड़ी है जिस पर चलकर लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है, यही आत्मसम्मान अलका में है जो सिंहरण को देश के लिए सुरक्षित रखती है। उसमें नयी शक्ति भरती है, कहती है, '' मालववीर तुम्हारे मनोबल में स्वतन्त्रता है और तुम्हारी दृढ़ भुजाओं में आर्यावर्त के रक्षण की शक्ति है, तुम्हें सुरक्षित रहना ही चाहिए।''[5]

प्रसाद की राष्ट्रीयता संकुचित नहीं है और न ही उग्र राष्ट्रवाद, जैसा पश्चिम के कुछ देशों में देखने को मिलता था। डॉ० दशरथ ओझा का कथन है; ''प्रसाद की राष्ट्रीयता में संकीर्णता को स्थान नहीं। उनकी राष्ट्रीयता महात्मा

गांधी की राष्ट्रीयता के सदृश्य विशाल है, जिसका मूलाधार आस्तिकता और ब्राह्म रूप देश–सेवा है।''[6]

इसी सन्दर्भ में राजेश्वर प्रसाद अग्रवाल का मत है कि– '' प्रसाद अपने देश के सामने दूसरे देश की प्रशंसा नहीं सुन सकते। इसी कारण रायबाबू के और प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक में बहुत अन्तर हो गया है।''[7] 'चन्द्रगुप्त' में न केवल मगध की स्वाधीनता के लिए युद्ध होता है वरन पुरू या पर्वतेश्वर के लिए भी सहायता की जाती वही पर्वतेश्वर जिसने नन्द का अपमान किया है। चाणक्य को कुछ महत्व नहीं दिया है। उसी को सिकन्दर के युद्ध के समय चन्द्रगुप्त द्वारा सहायता की जाती है। इसी राष्ट्रीयता के कारण पर्वतेश्वर सिकन्दर से एक नरपति का दूसरे नंरपति के साथ व्यवहार करने की बात करता है। सिकन्दर कहता है, ''मैने एक अलौकिक वीरता का स्वर्गीय दृश्य देखा है। होमर क कविता में पढ़ी हुई जिस कल्पना से मेरा हृदय भरा है, उसे यहाँ प्रत्यक्ष देखा।''[8] इसी कारण सिकन्दर बार–बार नतमस्तक होता है चाहे वह दाण्ड्यान के आश्रम में या मालव युद्ध में। प्रसाद की राष्ट्रीयता का स्वर यही है, जो विदेशी आक्रान्त से प्रशस्तिगान कराता है।

प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना 'राष्ट्रवाद' की तथाकथित एकल–दृष्टि स निर्देशित नहीं थी, बल्कि यह व्यापक मानवतावाद की धरातल पर फली–फूली थी जैसा कि प्रभाकर श्रोत्रिय का कहना है– ''देश की पराधीनता प्रसाद के लिए समकालीन यथार्थ का महत्वपूर्ण पक्ष या परन्तु उनकी गहरी सांस्कृतिक चेतना और विश्व मानवता वाद ने उनकी राष्ट्रीयता और देश–प्रेम को संकीर्ण राष्ट्रबाद नहीं बनने दिया, बल्कि उन्होंने देश की स्वाधीनता और आत्मगौरव की रक्षा को 'राष्ट्रवाद' की मनोवृति से अनेक स्तरों पर अलगया है।''[9] कार्नेलिया का यह कथन है कि– ''और देश तो मनुष्यों की जन्मभूमि है, भारत मानवता की जन्मभूमि है।''[10] समग्र विश्व को एकसूत्रता प्रदान करती है मानवीयता के आधार पर यही मानवता का पाट जिसे पूरे विश्व ने भारत से सीखा है। राष्ट्रीय प्रेम के सन्दर्भ में 'चन्द्रगुप्त' में दो गीत है। एक गीत विदेशी कन्या कार्नेलिया द्वारा गाया गया है। ''अरूण यह मधुमय देश हमारा।''[11] दूसरा गीत अलका द्वारा गाया गया है, ''हिमाद्री तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।''[12] अलका द्वारा गाया गीत देश में नवजागरण की चेतना भरती है एवं राष्ट्रीय उद्‌बोधन का गीत है। जिससे भारतीय महिमा के गायन के साथ उद्‌बोधन भी है ऐसा उद्‌बोधन जो कायरों के मन में भी वीरता का संचार कर दे। प्रसाद 'चन्द्रगुप्त' में इसी माध्यम से तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम में अपना सहयोग देते है। यह भारतीय नवयुवक का गीत है जो उसके अमरत्व को, शूरता, साहस को जगाता है। अलका कहती भी है, ''पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है?''[13]

राष्ट्रीय उद्‌बोधन के तीन पक्ष हैं (क) स्वराज की मांग (ख) बलिदान को भावना (ग) राष्ट्रीय आन्दोलन की अभिव्यक्ति चन्द्रगुप्त की राष्ट्रीयता में देश से गहरा अपनापन है एक ऐसा लगाव जो सब कुछ से मिलकर जाना गया है। इस राष्ट्रीयता में देश के जर्रे–जर्रे से प्यार है, प्रेम है जिसका रक्त ही इन शरीरों में बह रहा है। अलका कहती है– ''मेरा देश है, मेरे पहाड़ है और मेरे जंगल है। इस भूमी के एक एक परमाणु मेरे है और मेरे शरीर के एक–एक क्षुद्र अंश इन्हीं परमाणुओं से बने हैं। फिर मैं कहाँ, जाऊँगी यवन।''[14] धीरेन्द्र कुमार 'नाटककार जयशंकर प्रसाद' में लिखते हैं– "'चन्द्रगुप्त' उस युग की रचना है जब हमारा देश अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्षरत था। प्रसाद अपने युग की स्थितियों का लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व की परिस्थितियों के माध्यम से साक्षात्कार कराते हैं, जिनमें बाहर की ओर से राष्ट्र की सुरक्षा, विदेशी कूटचक्र एवम संघर्ष और राष्ट्र की एकता और अखण्डता का अन्दरूनी संघर्ष समानान्तर दिखता है।''[15]

सभी विद्धानों ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि 'चन्द्रगुप्त' में तीन मुख्य घटनाएं हैं– सिकन्दर का अभियान, नन्द–नाश और सिल्यूकल की पराजय। इन तीनों का केन्द्रीय पात्र चन्द्रगुप्त हैं।

'चन्द्रगुप्त' की राष्ट्रीयता संकीर्ण मानसिकता की वहीं है वहाँ पर केवल और केवल अपन लिए ही युद्ध नहीं होता है बल्कि पूरे देश के लिए संघर्ष होता है। 'चंन्द्रगुप्त' में खण्डित देश का दुस्वप्न नहीं है बल्कि सम्पूर्ण एक राष्ट्र की अवधारणा है साथ ही समग्र आर्यावर्त की बात है जो क्षेत्रीयता से मुक्त है। चाणक्य कहता है– ''तुम मालव हो और यह मागध यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्मसमान इतने से संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा।''[16] प्रसाद की सबसे गहरी चिन्ता अखण्ड राष्ट्र की थी जिसका सबसे बड़ा बाधक तत्व क्षेत्रीय भावना का उदय था। प्रसाद जानते थे कि चाहे वह प्राचीन काल रहा हो या मध्य काल, भारतीय पराजय का मुख्य कारण देश का छोटे–छोटे टुकड़ों में विभक्त होना है। इसलिए राष्ट्रीय एकता का सुन्दर निदर्शन 'चन्द्रगुप्त' में दिखाई देता है जहाँ सारी शक्तियाँ एकजुट होकर यवनों से युद्ध करती हैं– चाहे वह पंचनद का क्षेत्र हो या मालव प्रदेश। प्रसाद इस बात की ओर संकेत कर रहे थे कि आज हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता एकजुट रहने की, एक साथ रहने की है, उसी में हमारा आत्मसम्मान है। सिंहरण राजकुमारी से कहती है– ''परन्तु मेरा देश मालव हो नहीं गांधार भी है, यही क्या समर्ग आर्यावर्त है?''[17] अलका के द्वारा भी प्रसाद ने मालव–मगध का भेद मिटा कर केवल आर्यावर्त की स्थापना करवाई है। अलका अपने देशद्रोही भाई आम्भीका के सम्मुख आर्यवर्त का व्यापक आदर्श प्रस्तुत करती है– ''भाई तक्षशिला मेरा नहीं और तुम्हारा भी नहीं, तक्षशिला आर्यावर्त का एक भू–भाग है, वह आर्यावर्त का होकर रहे, इसके लिए मर मिटो।''[18] 'चन्द्रगुप्त' का अंत भी इसी भावना के साथ दिखाई देता है जो चाणक्य के कथनों के द्वारा अभिव्यक्त होता है। चाणक्य आम्भीका से कहता है– ''तुम जानते हो कि चन्द्रगुप्त ने दक्षिणापथ के स्वर्ग गिरी से पंचरद तक, सौराष्ट्र से बंग तक एक महान राज्य स्थापित किया है,

यह साम्राज्य मगध का नहीं है, यह आर्य साम्राज्य है।''[19] यही प्रसाद का लक्ष्य है एवं उदेश्य है। उस पराधीनता में रहकर प्रसाद ने जो दृष्टि प्रतिपादित की वह स्तुत्य है। प्रसाद इसी कारण नाटक के प्रारम्भ से लेकर अंत तक इसी दिशा में लगे रहे, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी ऐसा सम्भव नहीं हो पाया है।

'चन्द्रगुप्त' की राष्ट्रीय चेतना मूलतः सर्जनात्मक एवं संघर्षपरक है। इसमें घटनायें ऐतिहासिक है जो मूल कथा से सम्बन्ध रखती है किन्तु नवीन भी है। उनकी नवीनता प्रसाद की मौलिक उद्‌भावना है। 'चंन्द्रगुप्त' में जो ऐतिहासिकता है उसके सम्बन्ध में सिद्धनाथ कुमार का कथन है– ''प्रसाद ने महाभारत युद्ध के बाद से लेकर हर्षबर्धन के राज्यकाल तक के भारतीय इतिहास को अपना लक्ष्य बनाया है, क्योंकि यही भारतीय संस्कृति की उन्नति और प्रसार का स्वर्णयुग कहा जाता है।''[20] डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा हैः ''प्रसाद ने पारसी रंगमंच की तरह ही अपने नाटकों के लिए इतिहास–पुराण का उपयोग किया।''[21] चाणक्य का लक्ष्य यदि अखण्ड आर्यावर्त है तो वह उसे प्राप्त करता है भले ही वह कूटनीति के कारण संभव हो पाया है। यह कूटनीति राजनीतिक छल–प्रपंच के बीच से कम उनकी निष्ठा एवं सोदेश्यता से अधिक प्रभावित है। प्रसाद अपनी सर्जनात्मक शक्ति से ऐसे पात्रों में भी ऐसे भाव भर देते है जिनमें वह उपस्थित नहीं है जैसे आम्भीका एवं पर्वतेश्वर ये दोनों चरित्र बाद में देश प्रेम की ओर उन्मुख होते है एवं मालविका जैसे पात्र प्राणों का उत्सर्ग भी करते है।

राष्ट्रीय अपमान का हस्तक्षेप भी प्रसाद आवश्य समझते है। 'चन्द्रगुप्त' में आहत सिकन्दर का सिंहरण बध नहीं करने देता तथा कहता है– ''ठहरो, मालव वीरो! ठहरो यह भी एक प्रतिशोध है। यह भारत के उपर एक ऋृण था, पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्यतर है यवन शीघ्र जाओं।''[22] प्रसाद जी अन्तर्राष्ट्रीय आक्रमणों से रक्षा के लिए जहाँ प्रतिहिंसा, प्रतिशोध, शोर्य एवं पारस्परिक संगठन आदि की आवश्यकता पर बल देते है, वहीं क्रूर विश्व को सद्‌भावना एवं सदाचार की शिक्षा देना भी भारतवासियों का दायित्व मानते हैं। डॉ० हरीन्द्र का कथन है, ''प्रसाद जी भारतवर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक ऐसे सुसंगठित एवं पुष्ट राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करते है जिनमें आक्रमणकारियों को मुँह तोड़ उतर देने की पूर्ण क्षमता हो तथा जिसका दायित्व विनम्र विश्व को सदाचार की शिक्षा देकर क्रूरता से सद्‌भाव की और ले जाना हो।''[23] प्रसाद की यह धारणा बड़ी प्रबल है कि यह कार्य भारतवर्ष ही करता है। अतः वे बार–बार उस हीन अवस्था एवं हीन वीर्यता के कलमष को भारतीयों के मन से पूर्णतः हटाने का प्रयास करते है, जिसे योजनापूर्वक कुछ स्वाथी पाश्चात्य विद्धानों एवं उनके मानस– पुत्रों ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय हितों के लिए हम पर आरोपित किया हैं।

'चन्द्रगुप्त' की राष्ट्रीय चेतना संघर्षपरक है, यह संघर्ष कुछ अधिक ही तीव्रता के साथ उभरता है। दो विरोधी स्थितियों के बीच द्वन्द्व की स्थिति बार–बार बनती है। अपनी संघर्ष चेतना के कारण ही चाणक्य अपमानित होता है। एवं विरोधी शक्तियों को एक साथ लाता है। उसके मन में भी द्वन्द्व चलता रहता है। उसके मन में संकल्पों एवं विकल्पों का द्वन्द्व चलता है। वह कहता है– ''एक बार चलूँ नन्द से कहूँ। नहीं। परन्तु मेरी वृति, वही मिल जाय– मैं शास्त्र व्यवसायी नहीं रहूँगा मैं कृषक बनूँगा। राष्ट्र की भलाई–बुराई से क्या। तो चलूँ।''[24] चाणक्य की राष्ट्र प्रेम उसे संगठनकर्त्ता नायक बना देता है। हर बार युद्ध में वह सामने होता है चाहे मालव युद्ध हो या नन्द का नाश। यह संघर्ष कई स्तरों पर उभरता है। बुद्धि के स्तर पर, युद्ध रणनीति के अवसर पर एवं राष्ट्रीय जागरण के अवसर पर। हर बार उसका उदेश्य प्रखर राष्टोयता ही होती है एवं गहरा देश प्रेम ही होता है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक का सबसे प्रबल स्वर राष्ट्रीयता का है। राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्ध अनेकानेक समस्याओं का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रसाद ने गंभीरता से विचार किया और समाधान प्रस्तुत किए। उनकी राष्ट्रीय भावना किसी विदेशी तत्व ज्ञान पर आधारित न होकर पूर्णताः स्वदेशी है, किन्तु साथ प्रसाद जी ने राष्ट्रीयता का विनाशकारी रूप ग्रहण न करके उसे विश्व–शान्ति का माध्यम बनाया है। 'चन्द्रगुप्त' की राष्ट्रीय चेतना जो अनुप्राणित है। वह किसी भी राष्ट्र के जीवन के लिये यह चेतना अनिवार्य है। जब तक राष्ट्र रहेगा, राष्ट्रीय भावना की आवश्यकता बनी रहेगी और अपनी राष्ट्रीय चेतना का बोध अपेक्षित रहेगा।

संदभं सूची :

१. गुप्त किशोरी लाल, प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृ०– १६६
२. ओझा डॉ० दशरथ, हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकाश, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, तृतीय संस्करण पृ०–२१३–२१४
३. शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ०– ५५३
४. जयशंकर 'प्रसाद', चन्द्रगुप्त, प्रकाशक–विश्व बुक्स, दिल्ली, २००८, पृ०–३५ ५. वही, पृ०–३७
६. हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकाश, पृ०–२०३
७. अग्रवाल राजेश्वर प्रसाद, प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १६४६ पृ०–२६
८. चन्द्रगुप्त, पृ०–७३
९. श्रोत्रिय प्रभाकर, जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, २००४, पृ०– ६८
१०. चन्द्रगुप्त, पृ०–६३ ११. वही, पृ०– ६३
१२. वही, पृ०– १२५ १३. वही, पृ०– ८२
१४. वही, पृ०– ५७
१५. चन्द्रगुप्तः धीरेन्द्र कुमार, तेजा सत्येन्द्र कुमार, नाटककार जयशंकर प्रसाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली–२००४, पृ०– ४४४
१६. चन्द्रगुप्त, पृ०– ३५–३६ १७. वही, पृ०– ३७
१८. वही, पृ०– १२६ १९. वही, पृ०– १२४
२०. सिद्धनाथ कुमार, प्रसाद के नाटक, अनुपम प्रकाशन, पटना, १६६०, पृ०– ८३
२१. लाल लक्ष्मीनारायण, पारसी हिन्दी रंगमंच, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली – १६७०, पृ०– १६०
२२. चन्द्रगुप्त, पृ०– ८७
२३. डॉ० हरीन्द्र, प्रसाद का नाट्य– साहित्यः परम्परा एवं प्रयोग, प्रतिष्ठान मेरठ, प्रथम संस्करण, पृ०– २५४
२४. चन्द्रगुप्त, पृ०– ४२